



Original Article

21 वीं सदी के हिंदी साहित्य और सिनेमा में चित्रित धार्मिक समस्याएँ

प्रो. डॉ. किशोर पवार

हिंदी विभागाध्यक्ष,

लक्ष्मीबाई भाऊराव पाटील महिला महाविद्यालय, सोलापुर

Manuscript ID:

IJAAR-C130365

ISSN: 2347-7075

Impact Factor – 8.141

Volume - 13

Issue - 3

January – February 2026

Pp. 332 - 338

Submitted: 04 Feb. 2026

Revised: 14 Feb. 2026

Accepted: 20 Feb. 2026

Published: 28 Feb. 2026

Corresponding Author:

प्रो. डॉ. किशोर पवार

Quick Response Code:



Website: <https://ijaar.co.in/>



DOI: 10.5281/zenodo.22787112

DOI Link:

<https://doi.org/10.5281/zenodo.22787112>



Creative Commons



प्रस्तावना:

धर्म भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक संरचना का आधारभूत तत्त्व है। पर 21वीं सदी में धर्म का स्वरूप केवल आध्यात्मिक आस्था तक सीमित नहीं रहा। धर्म वर्तमान समय में सामाजिक संघर्ष, राजनीतिक पहचान, नैतिक द्वंद्व, सांप्रदायिक विभाजन तथा व्यक्तिगत और सामूहिक पहचान का केंद्र बन चुका है। इसी बदलते संदर्भ में हिंदी साहित्य और सिनेमा ने धर्म को नए नजरिए से प्रस्तुत किया है। जहाँ वह आत्मिक संबंध के साथ-साथ सामाजिक और राजनीतिक चिंताओं का दर्पण भी बन जाता है। भारतीय समाज को धर्म के नाम पर सीधे-सीधे बाँटने की सफल राजनीति इस काल में हो रही है। साहित्य इसका मूकदर्शक बनकर नहीं रह सकता। धर्म के इस बदले हुए असामाजिक स्वरूप के खिलाफ हिंदी साहित्य में बराबर आवाज मुखर होती रही। ऐसे रचनाकारों में दलित, नारीवादी, आदिवासी विमर्श तथा मानवतावादी रचनाकारों ने अपने साहित्य में जगह दी है। ऐसे तमाम रचनाकारों के नाम यहाँ लिखे जा सकते हैं, जिन्होंने भारतीय समाज में धर्म के इस विपरीत सामाजिक सरोकार का पुरजोर विरोध किया है। ऐसे रचनाकारों में उदयप्रकाश, प्रियंवद, विनोदकुमार शुक्ल, श्यौराज सिंह बेचैन जैसे कई रचनाकारों को देखा जा सकता है। धर्म का वास्तविक अर्थ है- 'मनुष्य के रूप में हमारा कर्तव्य' परंतु आज के समय में हिंदू, मुसलमान आदि आचरण पद्धतियों को धर्म का आधार बनाकर समाज में सांप्रदायिक विद्वेष उत्पन्न करने के तमाम प्रयास राजनेता अपने राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति के लिए करते रहते हैं। एक विचारधारा को दूसरी विचारधारा का विरोधी बनाकर आपस में लड़ाया जा रहा है। परिणामतः पिछले 25 वर्षों में धार्मिक तनाव सबसे अधिक बढ़ाया गया है। लोग अपनी-अपनी धार्मिक पहचान ढूँढ़ने लगे हैं। लोग सोशल मिडिया के जरिये और अधिक धार्मिक कट्टरतावादी बनाए जा रहे हैं। ये सारी बातें किसी भी तरह हमारे देश की एकता, अखंडता और संप्रभुता के लिए पोषक नहीं हैं। हिंदी साहित्य इसका विरोध कर रहा है। सांप्रदायिकता के खिलाफ हिंदी साहित्य की आवाज को प्रकाश में लाना भी समय की माँग बन गई है।

बीज शब्द - 21वीं सदी, हिंदी साहित्य, हिंदी सिनेमा, धार्मिक समस्याएँ, सांप्रदायिकता, सामाजिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य, पाखंड, अंधविश्वास आदि।

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.

How to cite this article:

प्रो. डॉ. किशोर पवार. (2026). 21 वीं सदी के हिंदी साहित्य और सिनेमा में चित्रित धार्मिक समस्याएँ. *International Journal of Advance and Applied Research*, 13(3), 332 - 338. <https://doi.org/10.5281/zenodo.22787112>



विषय-प्रवेश:

इस शोधालेख में 21वीं सदी के हिंदी साहित्य और सिनेमा में धर्म से जुड़ी प्रमुख समस्याओं का विश्लेषण प्रस्तुत करने का प्रयास है। हिंदी कथाकार 'प्रियंवद' अपने सांप्रदायिकता विरोधी उपन्यास 'वे वहां कैद हैं' की भूमिका में लिखते हैं, "जिन्होंने कभी सांप्रदायिकता के नाम पर निरपराध और अबोध लोगों की हत्या होती है या उन्हें प्रताड़ित किए जाते हुए देखा है, वे कभी सांप्रदायिकता के पक्ष में नहीं हो सकते। वे कभी दूसरे संप्रदाय के लोगों के लिए किसी भी कारण या तर्क से हिंसक और क्रूर नहीं हो सकते।"1

साहित्य को हमेशा सांप्रदायिक सद्भाव के पक्ष में ही खड़े होना चाहिए। यहाँ रचनाकार ने अपने लेखकीय उत्तरदायित्व को स्पष्ट किया है। प्रियंवद के समान और भी कई रचनाकार हैं, जिन्होंने सांप्रदायिक विद्वेष का पुरजोर विरोध किया है। इस प्रकार सांप्रदायिकता सच्ची धार्मिकता की विरोधी होती है, इसे हिंदी साहित्य में प्रकट करने वाले कई रचनाकार हैं। इस तथ्य को यहाँ उदाहरणों के साथ देखा जा सकता है।

अ) हिंदी साहित्य में धार्मिक समस्याओं का सामाजिक - सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य:

धर्म परिभाषा में एक ऐसा तत्त्व है जो व्यक्ति को आत्मिक अनुभव, नैतिक दिशा और सामाजिक पहचान प्रदान करता है। परंतु आधुनिक समाज में धर्म जब राजनीति, पहचान के संघर्ष, सत्ता और मीडिया के साथ मिश्रित होता है, तब वह समस्याओं का कारण बनता है। सांप्रदायिकता और सामाजिक विभाजन, धार्मिक पाखंड और अंधविश्वास धर्म बनाम विज्ञान, धार्मिक

राजनीति और पहचान, न्याय, नैतिकता और सांस्कृतिक अपेक्षाएँ इन विषयों को हिंदी साहित्य और सिनेमा ने अलग-अलग दृष्टिकोणों से प्रस्तुत किया है। नारी-विमर्श और दलित-विमर्श के रचनाकारों में यह स्वर स्पष्ट है कि किस प्रकार धार्मिक पाखंडों के चलते नारी और दलितों का भारतीय समाज में शोषण होता है। इस संदर्भ में दलित कवि भीमसेन संतोष लिखते हैं- "और देश की राजधानी में/ वोट क्लब पर/ विराट हिन्दू समाज/ अपनी दुमों के साथ/ दलित-प्रेम का नारा/ दलितों का हत्यारा/ नारा लगाता है-हम सब हिन्दू एक हैं।" 2 यहाँ भीमसेन जी हिंदुओं के नेताओं का दलित-प्रेम किस प्रकार झूठा और स्वार्थ से भरा है इसे स्पष्ट कर रहे हैं।

1. हिंदी साहित्य में धार्मिक पाखंड व अंधविश्वास का चित्रण: हिंदी साहित्य में धार्मिक पाखंड व अंधविश्वास को अभिव्यक्त करनेवाली कई रचनाएँ लिखी गई हैं। सामाजिक पाखंड और अंधविश्वास का विषय आधुनिक साहित्य में कई बार उभरा है। "अक्षर के जादू ने/ उसे पर असर बड़ा बेजोड़ किया/ चुप्प रहना छोड़/ दिया, लड़की ने डरना छोड़ दिया/...घुट घुटकर/ अब नहीं मरेगी, मंच पै चढ़कर बोलेगी/ समय और शिक्षा ने/उसके चिंतन का रुख/ मोड़ दिया।" 3

2. धर्म और सामाजिक पहचान की समस्या: 21वीं सदी की कई कहानियों में धर्म पहचान और अस्तित्व की लड़ाई से जुड़ा दिखता है। "क्या हम कभी/ जन्म भेद से होने वाली/ देश की क्षति का आकलन करते हैं,/ हिसाब लगाते हैं ?"4

भारत देश का सबसे अधिक नुकसान जातिभेद की समस्या ने किया है। भारत के सबसे बड़े धार्मिक समूह अर्थात् हिंदू धर्म के लिए यह सबसे बड़ा कलंक है। इस तथ्य को डंके की चोट



पर डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर जी ने कहा है | इसे दलित रचनाकारों ने अपनी आवाज में सुनाया है |

3. धर्म और राजनेताओं की आपसी सांठ-गाँठ: “यह उनके साहित्य की-संसद का शीतकालीन सत्र है, चल रहा है जैसे स्वचलित यंत्र- हो मनुष्य भी/ प्रतिनिधि बैठते हैं, उठते हैं/ खाते हैं पीते हैं/ आते हैं जाते हैं/ ऊँघते हैं जागते हैं/ बुनियादी प्रश्नों से दूर-दूर भागते हैं।” 5

भारत में व्यक्ति को मान-सम्मान केवल धन- संपत्ति की बदौलत नहीं मिलता | उसका जन्म किस धर्म और जाति में हुआ है, इसका भी बहुत बड़ा असर उसे जीवनभर झेलना पड़ता है | भारत की यह सामाजिक विषमता कई स्तरों पर विस्तारित है, जिसके कई पहलू हैं | नेता जिन्हें चुनकर दिया जाता है | जनता उनसे बराबरी की उम्मीद करती है परंतु; हर बार उनके हाथ केवल निराशा ही लगती है | जो धार्मिक, सामाजिक दृष्टि से पिछड़े हैं, उनके पास न तो जमीनें हैं, न ही जीने के अन्य मजबूत साधन | पर संसद इन सभी के विषय में मौन ही रहती है | कवि ने यहाँ इसी तथ्य को व्यक्त किया है |

4. अधिकारों के प्रति चेतना जाग्रत करने वाले प्रश्न: साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। साहित्य में जीवन की सच्चाई को प्रकट किया जाता है। साहित्य में चलने वाले की सार्थकता तभी तक है जब तक उसमें जीवन की चेतना का संचार है। जब उसमें जीवन की चेतना को प्रवाहित करने की क्षमता नहीं रहती, तब वह बेकाम हो जाता है। उस साहित्य की सार्थकता भी समाप्त हो जाती है। दलित-साहित्य ऐसा साहित्य है, जिसमें लेखक अपने लेखन की सामग्री को अपनी वास्तविक स्थितियों से एकत्रित करता है। दलित जीवन का सच्चा प्रतिबिंब इसमें प्रकट होता है। उसमें बनावटीपन के लिए जगह नहीं है। परंपरागत साहित्य के उपेक्षित पात्र अब लेखक बन स्वयं अपने समाज का सच सामने ला रहे हैं, जो साहित्य में

विभिन्न विमर्शों का ही परिणाम है। इस संदर्भ में प्रो. करुणाशंकर उपाध्याय ने बड़ी ही सटीक टिप्पणी की है-

“अस्मिता विमर्शों के कारण हमारे परंपरागत साहित्य रामायण, महाभारत के वे उपेक्षित पात्र जो दलित, आदिवासी नाम से जाने जाते थे, विमर्श के रूप में अब लेखक बनकर लिखने लगे हैं। यह भारत का बदलता हुआ परिदृश्य है”। 6

भारत की धार्मिक समस्याएँ कई पहलुओं पर आधारित हैं | एक समय था, जब धर्म के नाम पर भारत के बहुसंख्यक समाज को जीवनभर केवल अवहेलना ही सहनी पड़ी थी। आज वे लोग बेबाकी के अपनी पीड़ा साथ व्यक्त कर रहे हैं | यह साहित्य उसकी हुंकार है | 21वीं सदी इस दृष्टि से हिंदी साहित्य में विलक्षण है |

5. स्त्री मुक्ति का स्वर: भारत में स्त्री सम्बन्धी अध्ययन लम्बे समय तक पुरुषों द्वारा ही चलाए गए हैं। दलित स्त्री समाज का बहुत छोटा-सा हिस्सा ऐसा सामने आया है, जो अपनी सामाजिक स्थिति का खुद आकलन कर पाता है। तुलनात्मक रूप से देखा जाए तो मुख्य धारा के हिन्दी साहित्य में स्त्रीवादी स्वर काफ़ी लंबे समय बाद प्रबल हुआ। दूसरी तरफ दलित साहित्य में यह स्वर जल्दी विकसित हुआ है। आज दलित स्त्रियाँ दुनियादारी को किसी पुरुष की नहीं, खुद अपनी नजर से देखने लगी है। रजनी अनुरागी लिखती हैं- “मैं वैसी नहीं हूँ/जैसी तुम मुझे देखते हो/ मैं वैसी हूँ/ जैसी मैं खुद को देखती हूँ/ तुम देख नहीं सकते मुझको/ मेरी ही तरह।” 7

6. धर्म बनाम विज्ञान: वर्तमान भारतीय समाज में झूठी धार्मिकता की एक लहर चल पड़ी है | विज्ञान के सभी तथ्य हमारी धार्मिक पुस्तकों में पहले से ही उपलब्ध हैं, ऐसा कहने वाले तथाकथित ज्ञानी लोग प्रकट हो रहे हैं | विज्ञान की बात करने वाला, समाज को वैज्ञानिक सोच की तरफ आगे बढ़ाने



वाला इंसान मूर्ख ठहराया जा रहा है। इस विषम वातावरण में गरीबों और दलितों तथा धार्मिक और सामाजिक दृष्टि से पिछड़े लोगों की शिक्षा की स्थिति और भी नाजुक होने वाली है। कई रचनाकारों ने इस तथ्य की ओर इशारा किया है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' बताते हैं कि 'अमीर सवर्णों के स्वराज में दलितों और गरीबों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति ऊपर नहीं उठ सकती। स्वराज की अवधारणा तब तक फलीभूत नहीं हो सकती है; जब तक गरीबों, दलितों और स्त्रियों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की जाती है।' 'बेचैन' जी 'विश्व की मानवता का न्याय' कविता में 'स्वराज' को लेकर सवाल उठाते हैं। यह कविता उनके काव्य संग्रह 'भोर के अंधेरे में' संकलित है। स्वराज के सम्बन्ध में वे लिखते हैं- "क्या उस गरीब/ के बच्चे पढ़ सकेंगे?/ क्या इसी व्यवस्था को आप/ सबका स्वराज/ सबकी स्वतन्त्रता कह सकेंगे?" 8

7. भारत के धार्मिक प्रश्न की वास्तविकता: भारत का वास्तविक धार्मिक प्रश्न हिंदू और मुसलमान का नहीं है। भारत में भूख, बेरोजगारी, गरीबी, अशिक्षा, अमर्याद जनसंख्या, प्रदूषण, स्वास्थ्य की अपूर्ण सुविधाएँ, जाति-भेद ये वास्तविक धार्मिक समस्याएँ हैं। इस तरफ समाज का रुझान बढ़ाने वाला साहित्य भी हिंदी में रचा जा रहा है। प्रियंवद उनकी एक दीर्घ कहानी फाल्गुन की एक उपकथा में इस संदर्भ में लिखते हैं- "हमारे-तुम्हारे जैसे करोड़ों लोग, जो अपनी सारी बदहाली... भूख... बीमारी... दुख के बाद भी नष्ट नहीं होते। पूरी जिंदगी इसी धिनौने तरीके से जीते हुए बिता देते हैं। वह हिंदू भी हैं... मुसलमान भी हैं... और पूरी दुनिया में हैं। सच तो यह है कि हमारी पहली और असली लड़ाई इससे मुक्ति की होनी चाहिए। धर्म... जाति... राष्ट्र की नहीं। हिंदू मुसलमान की नहीं। यह धोखा... पाखंड... छल हमें पहचानना चाहिए।" 9

साहित्य में धर्म आज पाखंड, पहचान संघर्ष, सामाजिक नियंत्रण, आत्मिक आस्था, और तर्कहीन विश्वास इन सब के रूप में प्रस्तुत होता है। चिंतनशील लेखक इसे केवल पूजा-पाठ का विषय नहीं रखते, बल्कि सामाजिक विभाजन, राजनीति और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का प्रेरक तत्त्व बना रहे हैं।

आ) हिंदी सिनेमा में धार्मिक समस्याएँ: 21वीं सदी के हिंदी सिनेमा ने धर्म को दृश्यशैली, संवाद, कथानक और पात्र-निर्माण के माध्यम से समस्याओं का दर्पण बनाया है। यहाँ कुछ प्रमुख फिल्मों के उदाहरण दृष्टव्य हैं-

1. सांप्रदायिकता और सामाजिक विभाजन का मिश्रण : **उड़ता पंजाब - फ़िल्म उड़ता पंजाब (2016)** में धर्म और पहचान का मिश्रण एक सांप्रदायिक, सामाजिक- राजनीतिक समस्या के रूप में दिखाया गया है। फ़िल्म के कई संवाद ऐसा संकेत करते हैं कि हमारी पहचान धर्मीय धारणाओं से जुड़ी है, और वह पहचान सामाजिक समस्याओं के लिए एक कारण बन सकती है। यह एक संवाद में व्यक्त होता है: "हम कौन हैं? सिर्फ़ एक पहचाने वाली पहचान।" 10 यह उद्धरण इस बात को दर्शाता है कि जब धर्म पहचान की भाषा बन जाता है, तो वह सामाजिक विसंवाद और अलगाव को जन्म दे सकता है। उड़ता पंजाब में धर्म का प्रतीकात्मक अर्थ मिलता है — वह सोशल नेटवर्क, अपराध, तस्करी और भ्रष्ट पहचान के बीच एक असुरक्षा का पर्याय बन जाता है। फ़िल्म यह प्रश्न खड़ा करती है कि क्या धर्मीय पहचान समाज को सुरक्षित करती है या वह भेदभावों को भड़काती है?

2. धर्म, परिवार और सामाजिक अपेक्षाओं की 'दंगल' - दंगल (2016) सीधे धर्म का प्रश्न नहीं निकालती, परंतु इसका कथानक धार्मिक परंपराओं, पितृसत्ता और सांस्कृतिक अपेक्षाओं के साथ जुड़ा हुआ है। फ़िल्म में एक संवाद आता है:



“कुशती लड़ने वाली लड़की को समाज क्या कहेगा?” 11

यह वाक्यांश धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतिबद्धताओं और परिवार की रूढ़ियों के बीच उठते प्रश्न को उजागर करता है। धार्मिक परंपराओं के बहाने प्रचलित सामाजिक मान्यताएँ ही कभी-कभी नवाचार और स्वतंत्रता का विरोध करती हैं। यह फिल्म दिखाती है कि कैसे धर्म और संस्कृति एक प्रतीकात्मक ढांचे के रूप में कार्य करते हैं- जहाँ पारंपरिक रूढ़ियाँ लिंग आधारित अपेक्षाओं को भी सही ठहराती हैं।

3. न्याय, नैतिकता और धर्म- ‘पिंक’ पिंक (2016) एक ऐसी फिल्म है जिसमें धार्मिक प्रतीकवाद का प्रत्यक्ष हवाला कम है, पर फिल्म न्याय, सामाजिक पूर्वाग्रह, महिला स्वतंत्रता और धार्मिक, सांस्कृतिक, नैतिक अपेक्षाओं के बीच टकराव को प्रस्तुत करती है। फिल्म का प्रसिद्ध संवाद है: **“नो मतलब नो।” 12** यह वाक्य सामाजिक अनुचित अपेक्षाओं, जिनका आधार कथित धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएँ हैं; उनके खिलाफ एक नैतिक दलील पेश करता है। यह दर्शाता है कि समाज किस प्रकार धार्मिक प्रथा-आधारित नियमों को व्यक्तिगत स्वतंत्रता के ऊपर रखता है। फिल्म यह प्रश्न करती है कि क्या धर्म, संस्कृति के नाम पर न्याय और मानवाधिकारों को नजरअंदाज़ किया जा सकता है ?

4. जीवन-मृत्यु, संस्कार और धारणाओं का ‘मसान’- मसान (2015) धर्म के संस्कार, जीवन के अर्थ, मृत्यु और

सामाजिक प्रतिमानों पर गहराई से विचार करती है। फिल्म में कुछ संवाद जीवन के अंतिम संस्कार और सामाजिक दृष्टिकोण के बीच टकराव को रेखांकित करते हैं। प्रतिमाओं और पितृ-परंपराओं के नाम पर यह फिल्म सवाल करती है कि धार्मिक अनुष्ठानों के पीछे क्या वास्तविकता है? और क्या वह आध्यात्मिक वास्तविकता का प्रतिनिधित्व करती हैं ? या केवल सामाजिक शिष्टाचार का ? यह फिल्म बनारस के जीवन और मृत्युदृष्टांत के प्रतीकात्मक ढांचों को प्रस्तुत कर धर्म को जीवन की कठिनाइयों से संवादात्मक रूप से जोड़कर दिखाती है।

5. इतिहास, धर्म और पहचान - ‘पद्मावत’ - पद्मावत (2018) फिल्म एक ऐतिहासिक नायक-नायिका कथा के रूप में सामने आती है, पर इसके प्रतीकात्मक तत्वों में धर्म, सम्मान, सत्ता संघर्ष और सामाजिक दबाव की परतें मौजूद हैं। फिल्म का कथ्य दर्शकों को यह सोचने पर मजबूर करता है कि धार्मिक प्रतीक केवल आध्यात्मिक नहीं, बल्कि सामाजिक शक्ति के साधन भी बन सकते हैं। विवादों के बीच यह फिल्म समाज में धार्मिक पहचान, गौरव और सम्मान को राजनीतिक नाटकीयता से जोड़ती है।

इ) हिंदी साहित्य और हिंदी सिनेमा का तुलनात्मक विश्लेषण - हिंदी साहित्य और हिंदी सिनेमा में जो धार्मिक समस्याएँ चित्रित हुई हैं, उनका स्वरूप कुछ इस प्रकार है-

हिंदी साहित्य और सिनेमा में धर्म से जुड़ी समस्याओं की तुलना:

विश्लेषण बिंदु	हिंदी साहित्य	हिंदी सिनेमा
प्रस्तुति का माध्यम भाषा	भाषा, मनोवैज्ञानिक चिंतन	दृश्य, संगीत, संवाद
धर्म का स्वरूप	आलोचनात्मक, विचारशील	प्रतीकात्मक, सामाजिक संवाद
मुख्य समस्याएँ	पाखंड, पहचान संघर्ष	सामाजिक विभाजन, न्याय/धर्म
प्रभाव	चिंतन और समीक्षा	दर्शक-आधारित बहस
उद्देश्य	विश्लेषण और आलोचना	सामाजिक संवाद और प्रेरणा

1. सामाजिक प्रभाव - साहित्य और सिनेमा दोनों भी सामाजिक दृष्टि से अपना अपना प्रभाव छोड़ने वाली विधाएँ

हैं। यह प्रभाव बहुमुखी होता है। सिनेमा और साहित्य के कारण समाज में वैचारिक चेतना उत्पन्न होती है। साहित्य की तुलना में



सिनेमा के वैचारिक प्रभाव की व्याप्ति अधिक होती है। इस वैचारिक प्रभाव के कारण समाज में कुछ तर्कपूर्ण विचार उत्पन्न होते हैं। साहित्य और सिनेमा के चलते भारतीय समाज की अनेक धार्मिक प्रथाओं और मान्यताओं की आलोचना होती है। उन मान्यताओं पर सामाजिक चर्चाएं भी संपन्न होती हैं। साहित्य और सिनेमा समाज के न्याय, नैतिकता और धार्मिक अपेक्षाओं को अभिव्यक्त करते हैं। धार्मिक और आध्यात्मिक पहचान दिलाने की दृष्टि से भी साहित्य और सिनेमा दोनों का योगदान महत्वपूर्ण होता है। साहित्य और सिनेमा लोगों को सामाजिक चुनौतियों के प्रति जागृत बनाते हैं।

निष्कर्ष:

21 वीं सदी के हिंदी साहित्य और सिनेमा में धर्म अब एक निर्दिष्ट पारंपरिक विषय नहीं रह गया बल्कि वह सामाजिक, राजनीतिक, नैतिक और व्यक्तित्वगत समस्याओं का गूढ़ दर्पण बन गया है। इन रचनाओं ने धर्म को पाखंड, पहचान संघर्ष, न्याय, धर्म संघर्ष, सामाजिक विभाजन तथा नैतिक द्वंद्व के रूप में प्रस्तुत किया है। धर्म अब आस्था से ऊपर उठकर समाज की संरचना, चेतना और भावनाओं का एक प्रभावशाली तत्त्व बन गया है, जिसे साहित्य और सिनेमा दोनों ने आलोचनात्मक, संवेदनशील और समकालीन दृष्टिकोण से समझा और प्रस्तुत किया है, वे बिंदु इस प्रकार हैं-

1. भारत की धर्म से संबंधित समस्याएं बहुआयामी हैं। भारतीय समाज की संरचना धर्म पर आधारित है। धर्म की भूमिका भारतीय समाज रचना में अत्यंत महत्वपूर्ण है। धर्म साहित्य और सिनेमा दोनों के लिए एक केंद्रीय विषय बना हुआ है। 21 वीं सदी में हिंदी सिनेमा और साहित्य के क्षेत्र में काफी बदलाव हुए हैं। तकनीकी संसाधनों के विकास के कारण इन दोनों के स्वरूप में अनेक बदलाव हुए हैं।

2. भारत में राजनीतिक चेतना धर्म से संलग्न विषय है। हिंदी साहित्य धार्मिक चेतना को सिनेमा की तुलना में सही दिशा देने में अधिक सक्षम प्रतीत होता है।
3. हिंदी सिनेमा में दिखाए जाने वाला धार्मिक सरोकार कई बार वास्तविक सामाजिक जीवन से दूर नजर आता है। सिनेमा की तुलना में साहित्य भारतीय धार्मिक स्थिति और समस्याओं को अधिक योग्य दिशा प्रदान कर रहा है।
4. हिंदी सिनेमा में आज जिन धार्मिक समस्याओं को उजागर करना आवश्यक है वह समस्याएं अछूती ही रह जाती हैं। संत जीवन से संबंधित समस्याएं वास्तव में धार्मिक समस्या का ही एक रूप है। परंतु हिंदी सिनेमा में इस समस्या पर बहुत कम विचार किया गया है।
5. हिंदी साहित्य में धर्म से संबंधित अनेक समस्याओं और विषयों को संलग्न किया गया है।
6. हिंदी साहित्य के प्रत्येक संवेदनशील रचनाकार से इसी प्रकार की उम्मीद है कि वह आने वाले समय में भी धार्मिक समस्याओं को उठाते रहेंगे और उसे पर यथायोग्य सन्देश, दिशानिर्देश अपनी रचनाओं के द्वारा प्रस्तुत करेंगे।
7. हिंदी साहित्य और सिनेमा दोनों धार्मिक समस्याओं से संलग्न विधाएं हैं। दोनों में स्वरूपगत अंतर होने के कारण दोनों से भिन्न-भिन्न अपेक्षाएं की जा सकती हैं। साहित्य को धार्मिक समस्याओं को केंद्र में रखकर ही आगे बढ़ना होगा। हिंदी साहित्य इस दिशा में योग्य प्रकार से आगे बढ़ रहा है। इस तथ्य को सहज रूप से स्वीकार किया जा सकता है।

संदर्भ सूची :

1. प्रियंवद – वे वहां कैद हैं, संवाद प्रकाशन, शास्त्रीनगर मेरठ, प्रथम संस्करण, 2002, पृ. 5.



2. भीमसेन संतोष, शोषित कहे पुकार, पृ. 5.
3. शौराज सिंह 'बेचैन' क्रौंच हूँ मैं (कविता संग्रह) 39 सहयोग प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995, पृ. 48.
4. शौराज सिंह 'बेचैन' भोर के अँधेरे में, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2018, पृ. 57.
5. वही, पृ. 57.
6. रजत रानी 'मीनू', बदलते हुए परिदृश्य में दलितों की स्त्री केन्द्रित कविता (बहुरि नहीं आवना) जनवरी, 2021, पृ. 29.
7. रजनी अनुरागी, बिना किसी भूमिका के, आरोही प्रकाशन नई दिल्ली, 2011, पृ. 37.
8. शौराज सिंह 'बेचैन', भोर के अँधेरे में, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, संस्करण 2018, पृ. 118.
9. प्रियंवद, फागुन की एक उपकथा, सहयात्रा प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण, 2003, पृ. 60-61.
10. हम कौन हैं? सिर्फ पहचाने वाली पहचान |” (उड़ता पंजाब)
11. कुश्ती लड़ने वाली लड़की को समाज क्या कहेगा? (दंगल)
12. “नो मतलब नो |” (पिंक)